विनियामक चुनौतियों और दुविधाओं पर अनुचिंतन*

आनंद सिन्हा

यह वास्तव में मेरे लिए सौभाग्य की बात है कि मैं आज इस सम्मेलन में भाषण देने के लिए उपस्थित हुआ हूँ, जिसमें उद्योग और बैंकिंग क्षेत्र के अधिकारी भाग ले रहे हैं। आज मैं कुछ ऐसी चुनौतियों और दुविधाओं पर प्रकाश डालना चाहता हूँ जिनका सामना हम बैंकिंग प्रणाली के विनियामक के रूप में करते हैं। इनमें से कुछ चुनौतियाँ और दुविधाएँ संकट के बाद के तेजी से विकसित हो रहे विनियामक परिदृश्य के संदर्भ में हैं जिन्हें इस सम्मेलन की विषय-वस्तु में उचित ही प्रतिबिंबित किया गया है 'वैश्विक बैंकिंग : बदलते प्रतिमान'।

2. आजकल यह लगभग अपरिहार्य हो गया है कि भाषण की शुरुआत वित्तीय संकट का उल्लेख करते हुए की जाती है और आज मैं इसका अपवाद नहीं बनने वाला हूँ। मैं संक्षेप में संकट का संकेत करते हुए कुछ मुद्दों का संदर्भ बताना चाहूँगा जिन पर मैं प्रकाश डालने वाला हूँ। मुझे एक लतीफा याद आ रहा है, 'ठीक उस समय जब हम सोचते थे कि हम सभी प्रश्नों का उत्तर जानते हैं, किसी ने प्रश्न ही बदल दिये' और मैं सोचता हूँ कि यह कहावत बहुत अच्छे ढंग से इस बात को चरितार्थ करती है कि अब तक स्वीकृत विनियामक बुद्धिमत्ता को संकट ने किस तरह प्रभावित किया है। विनियामकों की भूमिका हमेशा से बहुत चुनौतीपूर्ण रही है क्योंकि उन्हें तेजी से विकसित हो रहे वित्तीय परिदृश्य में टिक पाने के लिए सत्वर गति बनाये रखनी होती है और कठोर श्रम करना होता है ताकि वे वक्र से आगे रह सकें। जो भी हो, इस संकट ने उनकी भूमिका को और महत्वपूर्ण बना दिया है।

3. संकट फैलने के लिए अनेक कारण गिनाये जा सकते हैं और उनमें से सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं : पूजी की अपर्याप्त मात्रा और गुणवत्ता, अपर्याप्त चलनिधि भंडार, अत्यधिक सुविधाप्राप्त वित्तीय संस्थाएँ, कुछ जोखिमों से अपर्याप्त रक्षा, प्रणालीगत जोखिमों पर ध्यान देने के लिए विनियामक ढाँचे का नहीं होना, 'ग्रेट मॉडरेशन' के युग की पृष्ठभूमि में आमदनी की तलाश में अपारदर्शी और तुच्छ समझे गये वित्तीय उत्पादों की बहुतायत, प्रतिभूतिकरण प्रक्रिया में विकृत प्रोत्साहन संरचना, ओवर-द-काउंटर (ओटीसी) बाजारों, विशेष रूप से क्रेडिट डिफॉल्ट स्वैप (सीडीएस), में पारदर्शिता का अभाव, अपर्याप्त विनियमन और पर्यवेक्षण, और एक अर्ध-विनियमित /अविनियमित आभासी बैंकिंग प्रणाली।

4. प्रणालीगत जोखिम पर कार्रवाई करने के लिए युक्तियुक्त ढाँचे का न होना सबसे बड़ी अपर्याप्तता रही है। यह एक अंतर्निहित धारणा रही है कि सुदृढ़ संस्थाओं में सुदृढ़ प्रणाली का निर्माण होता है। यह भ्रामक सिद्ध हो चुका है क्योंकि अलग-अलग संस्थाओं द्वारा आत्म परिरक्षण के लिए की गयी उचित कार्रवाई प्रणाली को अस्थिर कर सकती है। प्रणालीगत जोखिम की धारणा पर थोड़ा विचार करना लाभप्रद होगा।

5. प्रणालीगत जोखिम वित्तीय सेवाओं में भंग की जोखिम होती है जो संपूर्ण वित्तीय प्रणाली या उसके किसी भाग में नुकसान के चलते उत्पन्न होती है और जिसका वास्तविक अर्थव्यवस्था[1] के लिए गंभीर नकारात्मक परिणाम हो सकता है। प्रणालीगत जोखिम के दो पहलू होते हैं। एक है किसी भी समय प्रणाली के भीतर इसके संवितरण के संदर्भ में और दूसरा है समय के साथ इसके विकसित होने के संदर्भ में। प्रातिनिधिक आयाम यह होता है कि जोखिम किस प्रकार किसी दिये हुए समय में प्रणाली के भीतर संवितरित होता है। इस आयाम में प्रणालीगत जोखिम के उत्पन्न होने का कारण होता है संस्थाओं के भीतर अंतर्संबद्धता, तुलनपत्र संबंधी उलझन, साझा एक्सपोजर और कभी-कभी वित्तीय संस्थाओं का साझा व्यवसाय मॉडल होना भी। दूसरी ओर, समय आयाम यह बताता है कि किस प्रकार वित्तीय प्रणाली में समग्र जोखिम कालक्रम मे विकसित होती है - जो प्रचक्रियता का मुद्दा है।

6. बासेल III की डिजाइन उन सभी कमियों पर ध्यान देने के लिए बनायी गयी है जो संकट के परिणामस्वरूप दृष्टिगोचर हुई हैं और उनमें प्रणालीगत जोखिम का बहुत महत्वपूर्ण मुद्दा शामिल है। बासेल III ढाँचे के भाग के रूप में अनेक उपाय प्रस्तावित किये गये जिनसे कार्यान्वयन संबंधी अनेक मुद्दे उठते हैं। मैं कुछ ऐसे मुद्दों पर चर्चा करना चाहता हूँ जो प्रमुख विनियामक चुनौतियों और दुविधाओं का कारण बनते हैं।

I. बासेल III का कार्यान्वयन

क) पूँजी

7. बासेल III दिशा-निर्देशों के अनुसार अपेक्षित पूँजी और विशेष रूप से इक्विटी घटक अधिक बड़ा हो गया है। जबकि न्यूनतम

*मुम्बई में 24 अगस्त 2011 को 'वैश्विक बैंकिंग : बदलते प्रतिमान' विषय पर फिक्की-आइबीए सम्मेलन में आनंद सिन्हा, उप गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक, द्वारा दिया गया भाषण। राजिंदर कुमार द्वारा प्रदान की गयी निविष्टियों के लिए आभार व्यक्त किया जाता है।

[1] आइएमएफ-बीआइएस-एफएसबी (2009)

जोखिमभारित परिसंपत्ति की तुलना में पूंजी का अनुपात (सीआरएआर) 8 प्रतिशत पर बना रहा है, इक्विटी घटक को 2 प्रतिशत से बढ़ा कर 4.5 प्रतिशत कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त, एक कैपिटल कंजर्वेशन बफर 2.5 प्रतिशत का होता है जो इक्विटी से बनता है। अतः पूँजी में इक्विटी का घटक कारगर ढंग से बढ़ा कर 2 प्रतिशत से 7 प्रतिशत कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त दो और पूँजी घटक जो कि पूरी तरह इक्विटी से बनते हैं, भी निर्धारित किये गये हैं - (क) 0-2.5 की सीमा के भीतर प्रतिचक्रीय पूँजी और (ख) प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण वैश्विक वित्तीय संस्थाओं (जी-एसआइएफआइ) पर पूँजी अधिभार जो कि 1-2.5 प्रतिशत की सीमा के भीतर होता है। भारतीय बैंक कम से कम कुछ समय के लिए जी-एसआइएफआइ पर पूँजी अधिभार के अधीन नहीं होंगे और प्रतिचक्रीय पूंजी की जरूरत निरंतर आधार पर नहीं होगी। अतः तात्कालिक चिंता अत्यधिक उच्च स्तर अर्थात 7 प्रतिशत के पूँजी घटक को पूरा करने की है जो वस्तुतः बासेल III के अंतर्गत अपेक्षाओं के संबंध में इस उच्च स्तर के घटक में रूपांतरित होता है कि सभी कटौतियों का समायोजन उस इक्विटी में किया जाना है जो अब तक टीयर I और II के बीच संवितरित की जाती थी।

8. बैंकिंग पर्यवेक्षण के संबंध में बासेल समिति (बीसीबीएस) द्वारा दिसंबर 2010 में प्रकाशित 91 बड़े बैंकों (जिनमें से 3 भारत के थे) के मात्रात्मक प्रभाव अध्ययन में 165 बिलियन यूरो और 577 बिलियन यूरो के इक्विटी घटक की कमी क्रमशः 4.5 प्रतिशत और 7 प्रतिशत की तुलना में दर्शायी गयी थी। यह बासेल III के कार्यान्वयन के लिए 1 जनवरी 2013 से 1 जनवरी 2019 तक बढ़ाये गये समय-ढाँचे से संबंधित अनेक कारणों में से एक कारण है। दूसरा कारण है अधिक बड़ी पूँजी अपेक्षाओं के चलते संक्रांति-काल में जीडीपी वृद्धि में गिरावट से बचाव करना। समष्टिआर्थिक मूल्यांकन दल (एमएजी), जो वित्तीय स्थिरता बोर्ड (एफएसबी) और बीसीबीएस द्वारा गठित मॉडलिंग विशेषज्ञों का एक दल है, द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार जबकि बैंक उधार दरें बढ़ाने और ऋण-वृद्धि घटाने का प्रयास उच्चतर पूँजी-स्तर में परिवर्तन के दौरान कर सकते हैं, इसका संयमित प्रभाव वास्तविक अर्थव्यवस्था पर हो सकता है। जीडीपी में अधिकतम कमी आधारिक पूर्वानुमान पर 35 तिमाहियों के बाद 0.22 प्रतिशत (0.03 प्रतिशत प्रतिवर्ष, जब अतिरिक्त पूँजी का निर्माण किया जाये) हो सकती है जिसके बाद जीडीपी की अभिप्रेत-पथ में पुनःप्राप्ति हो सकती है। लंबी परिवर्तन अवधि के परिणामस्वरूप लागत कम हो सकती है क्योंकि बैंकों को आंतरिक स्रोतों से पूँजी निर्माण के लिए अधिक समय मिलेगा और इस प्रकार उधार कम किये जाने या बाजार से नयी पूँजी जुटाने की कम आवश्यकता होगी। तथापि अंतरराष्ट्रीय वित्त संस्थान (आइआइएफ)द्वारा निजी क्षेत्र के लिए कहीं अधिक अनुमान लगाये गये हैं।

9. जहाँ तक भारत का संबंध है, हमारा अनुमान यह है कि प्रणाली स्तर पर परिवर्तन कोई बड़ा मुद्दा नहीं बनेगा क्योंकि इस समय सभी पूँजी अनुपात बासेल III की न्यूनतम अपेक्षा से ऊपर हैं, यद्यपि कुछ बैंकों पर दबाव हो सकता है। इसके अतिरिक्त, जोखिमों से बढ़ती रक्षा के चलते पूँजी अपेक्षा भारतीय बैंकों के लिए उतनी महत्वपूर्ण नहीं होगी क्योकि या तो ऐसे कार्यकलापों को अनुमति नहीं दी जाती (अर्थात पुनःप्रतिभूतिकरण) या उनका परिमाण काफी कम होता है (अर्थात ट्रेडिंग बुक)। तथापि, तनाव-बिन्दु यह होगा कि बैंकों को पेंशन और उपदान देयताओं के अपरिशोधित हिस्से का समायोजन आइएफआरएस में परिवर्तन पर प्रारंभिक तुलनपत्र में 1 अप्रैल 2013 को करना होगा। तथापि इक्विटी सहित पूँजी अपेक्षा उच्च जीडीपी का समर्थन करने के लिए काफी हो सकती है और यह तथ्य कि ऋण की तुलना में जीडीपी अनुपात जो इस समय 55 प्रतिशत पर काफी कम है, अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन, अर्थात वित्तीय समावेशन कार्यक्रम, अधिक ऋण-प्रधान क्षेत्रों यथा विनिर्माण और आधारभूत संरचना क्षेत्र आदि के चलते काफी बढ़ने वाला है।

10. बासेल III के कार्यान्वयन के लिए हमारे दिशा-निर्देशों को अंतिम रूप देने के बाद रिज़र्व बैंक और अन्य बैंक बासेल III के अंतर्गत पूँजीगत अपेक्षाओं का अनुमान लगाना आरंभ करेंगे। चूँकि पूँजीगत अपेक्षाएँ, इक्विटी और गैर इक्विटी दोनों काफी अधिक होने वाली हैं अतः वित्तीय बाजारों पर दबाव बढ़ सकता है, पूँजी-लागत बढ़ सकती है और पूँजी पर प्रतिलाभ (आरओई) कम हो सकता है। सरकार को संसाधनों की तलाश करनी होगी ताकि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में पूँजी-वृद्धि की जा सके। इस प्रकार का एक तर्क दिया जाता है कि बासेल III से बैंकों के लिए पूँजी जुटाना महँगा /कठिन होगा क्योंकि आरओई कम होगा और इससे बैंकिंग क्षेत्र निवेशकों के लिए अनाकर्षक बन जायेगा। मेरे विचार से यह तर्क पूर्णतया सही नहीं है क्योंकि निवेशक अंततः यह समझेंगे कि अच्छी पूँजी वाले बैंक कम जोखिम वाले होते हैं और इसलिए वे कम आरओई के लिए भी मान जायेंगे। फिर भी, आरओई पर दबाव से बैंकों में अविलंब इस बात की भावना जागेगी कि वे अपनी दक्षता में मानव संसाधन की उत्पादकता को और प्रौद्योगिकी का उपयोग बढ़ा कर सुधार करें। बासेल III का कार्यान्वयन करते समय हमारी दुविधा निम्नलिखित है (क) जहाँ हमारे पूँजी-विनियम अधिक कठोर हैं वहाँ क्या हम इनके साथ बने रहें ? (ख) क्या हम

विस्तारित समय सारणी का पालन करें या कार्यान्वयन अनुसूची को गति प्रदान करें, इस तथ्य को देखते हुए कि बैंकिंग प्रणाली प्रारंभ-बिन्दु अर्थात परिवर्तन के समय सुखकर स्थिति में होगी।

(ख) प्रतिचक्रीय पूँजी

11. विनियामकों को उन स्थितियों से संघर्ष करना पड़ सकता है जिनका कोई पूर्व उदाहरण नहीं हो और जहां कोई आँकड़े या विश्लेषण सामग्री नहीं उपलब्ध हों और फिर भी निष्क्रियता की लागत बहुत अधिक हो। इसके लिए एक विवेकपूर्ण निर्णय अपेक्षित होता है और उन नीतिगत उपायों का उत्तर देना होता है जिनके नतीजों के बारे में निश्चित रूप से कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। ऐसा एक उदाहरण है जब रिज़र्व बैंक को सितंबर 2004 से अगस्त 2008 के दौरान बैंकों के कतिपय क्षेत्रों (वाणिज्यिक स्थावर संपदा, पूँजी बाजार, आवास,गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियाँ (एनबीएफसी) और फुटकर खंडों) में एक्सपोजर के लिए मानक आस्तियों के संबंध में पूँजीगत अपेक्षाओं और प्रावधानन को बढ़ाना पड़ा। इन खंडों में अत्यधिक ऋण-वृद्धि के साथ आस्ति कीमतों में तेज वृद्धि उच्च जीडीपी वृद्धि की पृष्ठभूमि में प्रणालीगत जोखिम और आस्ति में अस्थाई तेज वृद्धि की निर्मिति की आशंका हो रही थी। ये नीतियाँ जिन्हें व्यापक संदर्भ में प्रतिचक्रीय नीतियों या समष्टिविवेकपूर्ण नीतियों के रूप में जाना जाता है, उस समय अधिक ज्ञात नही थी या उनके अनुसार काम नहीं किया जाता था। हमसे पूछा जाता है कि हमने किस प्रकार इन साधनों को, अर्थात जोखिम भार और प्रावधानन तथा उन उपायों को चुना, जिनमें इनका प्रयोग किया जाता था। तथ्य यह है कि रिज़र्व बैंक की कार्यप्रणाली व्यापक सांख्यिकीय विश्लेषण या मॉडलिंग या आस्ति में अस्थाई तेज वृद्धि की निर्मिति के निश्चय पर आधारित नहीं रही है। यह अधिकतर महत्वपूर्ण, समष्टिआर्थिक सेटिंग में सकल ऋण और क्षेत्रीय ऋण वृद्धि की प्रवृत्ति पर आधारित होती है। इसी कारण यह नियमों से आबद्ध नहीं रहा है जिसके लिए या तो कुछ मॉडल या प्रणालीगत जोखिम का कम से कम कुछ माप और विवेकपूर्ण पैरामीटरों के प्रति इसकी संवेदनशीलता अपेक्षित होगी।

12. जबकि प्रतिचक्रीय नीतियों का उद्देश्य बफर्स का निर्माण करते हुए प्रणाली की समुत्थानशक्ति को बढ़ाना होता है ताकि गिरावट के समय आघातों को बरदाश्त किया जा सके, इसका व्यापक उद्देश्य तेजी की अवधि में स्थिति के अनुसार मुड़ना होता है ताकि ऋण और आस्ति-कीमतों में उछाल को कम किया जा सके। एक अधिक महत्वाकांक्षी उद्देश्य चक्र के माध्यम से स्थिर ऋण-आपूर्ति का होगा - जो तेजी और मंदी के माध्यम से होगा। तथापि हमारा सीमित अनुभव दर्शाता है कि प्रतिचक्रीय उपाय उछाल के समय ऋण-आपूर्ति को संयत रखने में कारगर होते हैं, बनिस्बत मंदी के समय ऋण-आपूर्ति को बढ़ाने के। अर्थव्यवस्था में सुधार के समय पूँजी और /या मानक आस्तियों के लिए प्रावधानन को बढ़ाये जाने से ऋण-प्रवाह को लागत बढ़ा कर संयत किया जा सकेगा और इससे माँग प्रभावित होगी। तथापि, गिरावट के समय बफर्स को मुक्त करने पर ऋण-आपूर्ति में वृद्धि विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती। आर्थिक एजेंट जिनका तुलनपत्र गिरावट की वजह से प्रभावित होता है, वे जोखिम विमुख होंगे जिस प्रकार बैंक होंगे जो अत्यधिक सतर्क हो जायेंगे और इस प्रकार ऋण-आपूर्ति को बाधित करेंगे। तेजी और मंदी, दोनो के दौरान आर्थिक एजेंटों का व्यवहार 'डिजास्टर मायोपिया' का मामला लगता है। प्रतिचक्रीय उपायों का एक संभावित विषम प्रभाव गिरावट के दौरान अर्थव्यवस्था के पुनरुत्थान के संबंध में विनियामकों के लिए एक दूसरी चुनौती होती है।

13. आज, प्रतिचक्रीय नीतियों के संचालन के लिए साधनों को चुनना और उनकी प्रासंगिक प्रभावपूर्णता तथा अन्य नीतियों के साथ भी उनकी पारस्परिक क्रिया, खास कर मौद्रिक नीति के साथ, एक प्रमुख अनुसंधान का क्षेत्र है। जबकि हमारे मामले में मौद्रिक और प्रतिचक्रीय नीतियाँ अब तक एक ही दिशा में गतिमान रही हैं, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि प्रावधानन अपेक्षाओं को बदला जाना अधिक कारगर हुआ होता, बनिस्बत विनिर्दिष्ट क्षेत्रों को ऋण-प्रवाह संयत करने के लिए जोखिम भार को बदलने के। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि भारत में पिछले अनेक वर्षों से परिचालनरत बैंकों का पूँजी पर्याप्तता अनुपात 12 प्रतिशत से काफी ऊपर रहा है (दिसंबर 2010 में यह 14 प्रतिशत से अधिक था); जोखिम भार हमशाा ऋण की वृद्धि का अवमंदन करने में कारगर नहीं हो सकते क्योंकि बैंक जोखिमपूर्ण क्षेत्रों का वित्तपोषम करना जारी रख सकते हैं जो उच्चतर प्रतिलाभ दे सकें और इस प्रकार अपने पूँजी पर्याप्तता अनुपात को कुछ आधार अंकों तक गिरने दे सकते हैं और फिर भी विनियामक अपेक्षाओं से वे अधिक रह सकते हैं तथा बाजार की प्रत्याशाओं को पूरा कर सकते हैं। जिस सीमा तक उच्चतर जोखिम भार ब्याजदर-वृद्धि में रूपांतरित होते हैं वहाँ तक ऋण की माँग में कमी आ सकती है। दूसरी ओर, परिवर्तनशील प्रावधानन अपेक्षा संभाव्य रूप से अधिक कारगर हो सकती है क्योंकि यह बैंकों के लाभ-हानि खाता को प्रभावित करेगी जिनके प्रति बैंक अधिक संवेदनशील होते हैं। तथापि, इन मुद्दों पर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मतैक्य नहीं है। उदाहरण के लिए, जबकि इस बात को स्वीकार किया जाता है कि गत्यात्मक प्रावधानन जिसका अगुआ स्पेन बना था, ने स्पेनिश बैंकों को अन्य उन्नत औद्योगीकृत देशों के बैंको की तुलना में वित्तीय संकट को अच्छी तरह से बरदाश्त करने में मदद की थी, इस बात पर कोई सहमति नहीं है कि क्या इस उपाय ने प्रतिचक्रीयता को कम किया। जबकि कुछ लोगों का मानना है कि गत्यात्मक प्रावधान ने न तो स्पेन में ऋण-वृद्धि को निरुत्साहित किया, न ही गृह-निर्माण के क्षेत्र में कोई हलचल दिखाई पड़ी,

जिमेनेज और अन्य[2] द्वारा किये गये अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि गत्यात्मक प्रावधान ने स्पेन में प्रतिचक्रीयता का शमन करने में मदद की।

14. बीसीबीएस ढाँचा 'जीडीपी में ऋण का अनुपात' और दीर्घकालीन प्रवृत्ति से इसके उर्ध्वमुखी विचलन का उपयोग प्रतिचक्रीय सुरक्षित पूंजी के निर्माण की आवश्यकता का संकेत देने के लिए करता है। यह पद्धति भारतीय अर्थव्यवस्था और अन्य इएमई के लिए उपयुक्त नहीं है जैसाकि जून 2011 की वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट (एफएसआर) में भी इंगित किया गया था जिसका कारण है अर्थव्यवस्था में उच्च वृद्धि-दर और वित्तीय समावेशन आदि के चलते होने वाला संरचनात्मक परिवर्तन। हम प्रतिचक्रीयता के चलते उपस्थित होने वाली प्रणालीगत जोखिम पर कार्रवाई करने के लिए क्षेत्रीय दृष्टिकोण का उपयोग करते रहे हैं और हमें इसे जारी रखना पड़ सकता है। बीसीबीएस ढाँचा एक 'अनुपालन करें या स्पष्ट करें' ढाँचा होता है। जबकि यह ढाँचा हमें बीसीबीएस कार्यप्रणाली से विचलन करने की स्वतंत्रता देता है, दुविधा यह होती है कि क्या बीसीबीएस से विचलन के लिए दिया गया स्पष्टीकरण बाजारों द्वारा समुचित परिप्रेक्ष्य में देखा जायेगा या इसका निर्वचन अंतरराष्ट्रीय मानकों के अननुपालन के रूप में देखा जायेगा और उस स्थिति में यह भारतीय बैंकों के लिए अलाभकर होगा। किसी भी मामले में समष्टि विवेकपूर्ण प्राधिकारियों को अपनी नीतियों के तर्काधार को और उसके अंतर्गत की गयी कार्रवाई को संसूचित करने का अधिक निश्चित प्रयास करना होगा क्योंकि केंद्रीय बैंकों ने मौद्रिक नीति को संसूचित करने की कला को धारदार बना लिया है। केंद्रीभूत संसूचना से बाजार इन नीतियों को भलीभाँति समझ सकेंगे और इस प्रकार की गयी कार्रवाइयों को अधिक प्रभावी बना सकेंगे। ऐसी संसूचना तेजी और मंदी के समय समष्टिविवेकपूर्ण नीति के प्रभाव को अधिक समकारी बनाने में भी मदद करेगी।

ग) प्रतिचक्रीय प्रावधान

15. बासेल III में प्रतिचक्रीय सुरक्षित पूजी के अतिरिक्त प्रतिचक्रीय प्रावधानों की भी परिकल्पना की गयी है। अंतरराष्ट्रीय लेखांकन मानक बोर्ड (आइएएसबी) के परामर्श से बीसीबीएस एक प्रत्याशित हानि-आधारित प्रतिचक्रीय प्रावधानन कार्यप्रणाली पर काम कर रहा है। इसमें समय लग सकता है। भारत में बैंकों के पास अस्थायी प्रावधान होते हैं जिनके उपयोग की अनुमति हमारी ओर से नहीं दी गयी है, सिवाय प्रणालीगत दबाव की स्थिति को छोड़ कर। जबकि अस्थायी प्रावधान प्रतिचक्रीय प्रावधान के प्रयोजन को पूरा कर सकते हैं, इसके उपयोग को अनुमति देने के लिए एक ढाँचा आवश्यक होता है। एक अंतरिम उपाय के रूप में हम एक कार्यप्रणाली विकसित करने की चेष्टा कर रहे हैं जो स्पैनिश प्रावधानन प्रणाली पर आधारित होगी। तथापि ऐसा किया जाना सरल नहीं रहा है, यह देखते हुए कि बैंकों के पास अपेक्षित आँकड़े और उनका विश्लेषण उपलब्ध नहीं होता। हमारी ओर से प्रयास किये जा रहे हैं और हम उपलब्ध सीमित आँकड़ों के आधार पर सार्वजनिक पहुँच में एक चर्चापत्र रखने की योजना बना रहे हैं।

घ) लिवरेज

16. बासेल III पूँजी पर्याप्तता अनुपात को पूरा करने के लिए बैकस्टॉप व्यवस्था के रूप में एक लिवरेज अनुपात (तुलनपत्र बाह्य मदों सहित आस्तियों के बही मूल्य की तुलना में टीयर I पूँजी का अनुपात) निर्धारित करता है। हमारा विचार यह रहा है कि, चूँकि भारतीय बैंकों के लिए एसएलआर[3] अपेक्षाएँ महत्वपूर्ण होती हैं और कम जोखिम वहन करती हैं, अतः लिवरेज अनुपात के दायरे से बाहर रखा जाना चाहिए। तथापि इसे बीसीबीएस द्वारा स्वीकार नहीं किया गया। लेकिन सुकून भरा समाचार यह है कि भारतीय बैकों का लिवरेज अनुपात उन स्तरों की तुलना में, जिन पर विचार किया जाता रहा है, कम है।

ङ) चलनिधि

17. बासेल III में यह अपेक्षा की गयी है कि अर्थसुलभ आस्तियों के समुच्चय के माध्यम से उच्च स्तर की चलनिधि बनाये रखी जाये। अर्थसुलभ आस्तियों की परिभाषा बहुत कठोर है जिसमें यह अपेक्षा शामिल है कि इसे मुक्त रूप से उपलब्ध होना चाहिए। जबकि भारतीय बैंक एसएलआर अपेक्षा के माध्यम से अर्थसुलभ आस्तियों का एक बड़ा समुच्चय रखते हैं, फिर भी सच पूछिये तो ये बासेल III के अंतर्गत अर्थसुलभ आस्तियों के रूप में माने जाने योग्य नहीं होते क्योंकि एसलआर अपेक्षा अनिवार्य होने के चलते हर समय पूरी की जानी होती है। हमारी दुविधा यह है कि बैंकों से यह कहना कि वे एसएलआर के अतिरिक्त भी अधिक अर्थसुलभ आस्तियाँ रखें, उन्हें प्रतिस्पर्धात्मक रूप से अलाभकर स्थिति में डाल देंगे। अतः हमें यह विचार करना होगा कि किस हद तक एसएलआर को अर्थसुलभ आस्तियाँ रखे जाने के संबध में बासेल III अपेक्षाओं के रूप में माना जायेगा।

II. बासेल II के अंतर्गत उन्नत दृष्टिकोणों का कार्यान्वयन

18. भारत में वाणिज्यिक बैंक पहले ही बासेल II के अंतर्गत मानकीकृत दृष्टिकोणों को अंगीकृत कर चुके हैं। जबकि उन्नत दृष्टिकोणों की ओर रुख किये जाने के संबंध में समय सारणी पहले ही जारी की जा

[2] आइएमएफ वर्किंग पेपर डब्लूपी /11 /159, पॉलिसी इंस्ट्रूमेंट्स टू लीन अगेंस्ट द विंड इन लैटिन अमेरिका', जुलाई 2011

[3] सांविधिक चलनिधि अनुपात भारत में बैंकों द्वारा उनकी कुल निवल मांग और मीयादी देयताओं के निर्धारित अनुपात (इस समय 24 प्रतिशत) में नकदी, स्वर्ण या अभारित, विनिर्दिष्ट सरकारी प्रतिभूतियों में बनाए रखना होता है।

चुकी है, हमें बैंकों से अब तक कोई उत्साहवर्द्धक प्रतिक्रिया प्राप्त नहीं हुई है। उन्नत दृष्टिकोणों की ओर रु ख करना दो परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण है। उन्नत दृष्टिकोणों में बैंकों की व्यवसाय प्रक्रिया में भली-भाँति स्वीकृत परिष्कृत जोखिम प्रबंधन प्रणालियों को अंगीकृत किया जाना शामिल होता है जिसके लिए पूर्व आवश्यकता यह होती है कि प्रौद्योगिकी प्रणालियों का उन्नयन किया जाये और युक्तियुक्त कौशल सेट उपलब्ध हो। पुनः, उन्नत दृष्टिकोणों को नहीं अपनाना बड़े बैंकों के लिए प्रतिष्ठा का मुद्दा बन सकता है। अतः, बड़े बैंकों के लिए यह उपयुक्त समय है कि वे अपनी प्रणालियों का उन्नयन किये जाने पर और उन्नत दृष्टिकोणों की ओर रुख करने पर विचार करें। जहाँ तक प्रौद्योगिकी का संबंध है, कोर बैंकिंग सॉल्यूशन्स (सीबीएस) का कार्यान्वयन किये जाने से प्रौद्योगिकी को तत्काल प्रबंध सूचना प्रणाली (एमआइएस) और आँकड़ा विश्लेषण को आगे बढ़ाने का एक प्लेटफार्म मिलता है। रिज़र्व बैंक का वर्ष 2011-17 की अवधि के लिए आइटी विजन दस्तावेज, अन्य बातों के साथ-साथ, इनके लिए लक्ष्य और मार्ग निर्धारित करता है।

19. उन्नत दृष्टिकोणों को अपनाये जाने के लिए बैंकों के दिन-प्रतिदिन जोखिम प्रबंधन की अंतर्निहित प्रक्रियाओं के एक साथ उपयोग किये जाने की आवश्यता होती है। जहाँ तक कौशल का संबंध है, सार्वजनिक क्ष्त्र के बैंक विशेष रूप से इस बात को चुनौतीपूर्ण मान सकते हैं कि वे बाहर से उच्च कुशलताप्राप्त व्यक्तियों की भरती करें /उन्हें किराये पर लें अथवा अपने उन अधिकारियों को ही रखें जो प्रशिक्षण के माध्यम से उच्च कुशलता प्राप्त कर चुके हों। कौशल की अपेक्षा रखना चुनौतियों का एक अन्य सेट उपस्थित करता है; चूँकि उच्च सिरे की कुशलता सीमित संख्या में लोगों (क्वांट्स, जैसाकि उन्हें कहा जाता है) के पास होती है, यदि वरिष्ठ प्रबंध-तंत्र और /या निदेशक मंडल पूर्णतया सक्षम न हो तो निरीक्षण अपर्याप्त होगा और संस्थाओं को उच्चतर जोखिम का सामना करना होगा। हमारी दुविधा यह है कि क्या बड़े बैंकों को अपेक्षित प्रणालियों का स्वयं विकास करने दिया जाये या उन्हें नैतिक प्रत्यायन या विनियामक आदेश द्वारा ऐसा करने को कहा जाये जिसके लिए उन्हें अधिक तेज गति से अधिक तगड़ी प्रौद्योगिकी और जोखिम प्रबंधन प्रणालियों की ओर मुड़ना होगा और उन्नत दृष्टिकोणों को शीघ्र अपनाये जाने को सुविधाजनक बनाया जाना होगा।

III. सूचना की विषमता

20. बैंकों और उधारकर्ताओं के बीच सूचना-विषमता का होना एक स्वीकृत तथ्य है। यह समस्या बहुविध बैंकिंग परिदृश्य में अधिक प्रखर हो जाती है। इसके समाधान का रास्ता है ऋण सूचना कंपनियों (सीआइसी) के तंत्र के माध्यम से ऋण सूचना का संग्रह और आदान-प्रदान करने की एक तगड़ी प्रणाली को स्थापित करना। किसी उधारकर्ता के बारे में पूरी जानकारी का अभाव अधिक वित्तपोषण और निधियों के विपथन आदि का कारण हो सकता है जिसका निहितार्थ आस्ति-गुणवत्ता के लिए हो सकता है। वस्तुतः, कुछ समय पूर्व फोरेक्स डेरिवेटिव लेन देनों के संदर्भ मे यह एक मुद्दा रहा था। अभी हाल तक हमारे यहाँ ऋण सूचना ब्यूरो (इंडिया) लिमिटेड (सीआइबीआइएल) होता था लेकिन सूचना की विषमता बनी रहती थी क्योंकि बैंकों द्वारा आँकड़ों का सही और समय पर प्रेषण नहीं किया जाता था, हालाँकि अब इस संबंध में स्थिर गति से सुधार हो रहा है। रिज़र्व बैंक ने तीन और प्रतिष्ठानों को पंजीकरण प्रमाणपत्र दिया है कि वे सीआइसी की स्थापना करें और उन्होंने अब परिचालन आरंभ कर दिया है। अंतरिम उपाय के रूप में हमने एक फार्मेट बनाया था ताकि बहुविध बैंकिंग परिदृश्य में बैंकों के बीच सूचना का आदान-प्रदान हो सके। तथापि, इसने सुचारु रूप से कार्य नहीं किया है। हमें आशा है कि निकट भविष्य में जब नये सीआइसी अपने परिचालनों को स्थिर करेंगे, तब हमारी आधारभूत संरचना में इस महत्वपूर्ण अंतराल को पाटा जा सकेगा।

IV. तनाव-परीक्षण

21. एक ऐसी दुनिया में जो नवोन्मेष के कारण अधिकाधिक अंतर्संबद्ध और जटिल होती जाती है, जोखिमें बहुत बढ़ गयी हैं हालांकि व्यवसाय अवसर भी साथ-साथ बढ़े है। जोखिमों का उत्तम प्रबंध नहीं किये जाने के कारण संस्थाएँ विफल हो सकती हैं और द्रुत गति से प्रणालीगत संकट में उनका रूपांतरण हो सकता है जैसाकि हाल के संकट ने जोरदार ढंग से प्रदर्शित किया है। संकट के कारण हुआ नुकसान और पुनर्निर्माण की लागत काफी बड़ी होती है। तथापि मात्रात्मक जोखिम प्रबंधन मॉडल वास्तविक जगत में पूरी तरह से जोखिमों को प्रतिबिंबित नहीं करते हैं और यही वह संदर्भ है जिसमें तनाव-परीक्षण महत्वपूर्ण बन जाता है। अब इस बात को स्वीकार किया जाता है कि जिस प्रकार भौतिकविदों द्वारा वास्तविक जगत को रूपाकार दिया जाता है, उस प्रकार से वित्तीय बाजारों को सही रूपाकार दिया जाना कठिन होता है। ऐसा इसलिए क्योंकि मॉडल वास्तविकता से निरपेक्ष होते हैं और वित्त में वास्तविकता अधिक जटिल और अननुमेय होती है। अतीत के सांख्यिकीय संबंध आवश्यक रूप से भविष्य के लिए विस्तारित नहीं होते जिसका कारण होता है मानव-मस्तिष्क जो वित्तीय बाजारों के परिणामों को आकार प्रदान करता है। इस संबंध में मैं एक प्रमुख चिंतक इमानुएल डरमन को उद्धृत करना चाहूँगा - 'ऐसा नहीं कि भौतिक शास्त्र बेहतर होता है, लेकिन उसकी तुलना में वित्त का क्षेत्र अधिक सख्त होता है। भौतिकशास्त्र में आप ईश्वर के विरुद्ध कार्य करते हैं और वह अपने नियमों को अक्सर नहीं बदलता है। वित्त के क्षेत्र में आप ईश्वर-निर्मित प्राणियों, एजेंटों के विरुद्ध कार्य करते हैं जो अपने क्षणिक मत के आधार पर आस्तियों का मूल्यांकन करते हैं'।

22. इसलिए तनाव-परीक्षण को जोखिम प्रबंधन का अभिन्न अंग होना है। एफएसआर विविध परिदृश्यों के अंतर्गत किये गये तनाव-

परीक्षण की रिपोर्ट करता रहा है। भारतीय बैंकों के लिए युक्तियुक्त तनाव-परीक्षण परिदृश्य की शुरुआत करने में जिस एक मुद्दे का सामना हम करते हैं वह यह है कि अनेक देशों कि विपरीत भारतीय बैंकों द्वारा अतीत में गंभीर तनाव का सामना नहीं किया गया है। उदाहरण के लिए 1980 के दशक में 45 देशों और 1990 के दशक में 63 देशों ने प्रणालीगत बैंकिंग संकट का सामना किया। पुनर्निर्माण की लागत अर्जेंटीना के मामले में जीडीपी के 55 प्रतिशत तक ऊँची थी जबकि थाइलैंड के लिए यह जीडीपी का 42 प्रतिशत और कोरिया के मामले में जीडीपी का लगभग 35 प्रतिशत थी। विडम्बना यह है कि हमारे सौभाग्य से अतीत में गंभीर तनाव का कोई मामला सामने नहीं आया जिसने भारतीय बैंकों के लिए तनाव परिदृश्य को विनिर्दिष्ट किया जाना अपेक्षाकृत कठिन बना दिया है। एक विकल्प यह है कि शेष विश्व में देखे गये तनाव परिदृश्य को हमारे यहां भी लागू किया जाये लेकिन यह भारतीय बैंकिंग प्रणाली के लिए प्रासंगिक होने का मुद्दा उठाता है। अतः दुविधा यह है कि भारतीय बैंकों के लिए किस प्रकार के आत्यंतिक परिदृश्य का चयन किया जाये।

V. आइएफआरएस की ओर उन्मुख होना

23. भारतीय बैंकिंग प्रणाली को आइएफआरएस के साथ तालमेल बैठाने के लिए कुछ मुद्दों पर ध्यान देने की आवश्यकता होगी। पहला, वित्तीय लिखतों से संबंधित अत्यंत महत्वपूर्ण आइएफआरएस 9 का विकास अभी भी हो रहा है और इसका अनंतिम मानक शीघ्र उपलब्ध होने की संभावना नहीं है। इसके बाद भारतीय सनदी लेखाकार संस्थान (आइसीएआइ) को भारत के लिए संगत मानक को लागू करने की आवश्यकता होगी। इससे आइएफआरएस के साथ अभिसरण के लिए उपलब्ध अल्प समय को देखते हुए एक गतिशील लक्ष्य सामने आता है। मानकों के साथ अभिसरण किये जाने के संबंध में एक चुनौती यह होगी कि बैंकों में आइटी प्रणाली में काफी कौशल उन्नयन और संशोधन किया जाना होगा। इस संबंध में रिज़र्व बैंक जागरूकता उत्पन्न करने के लिए प्रयास कर रहा है और प्रशिक्षण कार्यक्रमों का भी आयोजन कर रहा है।

VI. आस्ति गुणवत्ता

24. प्रतिशत के रूप में सकल एनपीए जो मार्च 1997 के अंत में 15.70 प्रतिशत पर था, तेजी से घटता गया है और मार्च 2011 के अंत तक 2.24 प्रतिशत पर आ गया है, जिससे यह पूरी तरह पता नहीं चलता है कि इसमें अंतर्निहित वास्तविकता क्या है और कुछ प्रवृत्तियाँ इसलिए चिंता का विषय बनती हैं कि भविष्य में ये बैंकों की आस्ति-गुणवत्ता पर किस प्रकार का दबाव डालेंगी। संकट के बाद उच्च ऋण-वृद्धि के चरण के दौरान अत्यधिक उधार दिये जाने का परिणाम गिरावट-अनुपात[4] का स्थिर गति से बढ़ना हुआ है जो अंत-मार्च 2008 में 1.81 प्रतिशत था और अंत-मार्च 2010 में बढ़ कर 2.21 प्रतिशत हो गया जिसके बाद इसमें नरमी आयी और वर्ष 2011 में यह 2.01 प्रतिशत हो गया। चिंता की बात यह है कि पुनःप्राप्ति की गति वर्ष 2007-08 से गिरावट के साथ कदम नहीं मिला रही है और बट्टेखाते डाले जाने के बावजूद सकल एनपीए जो मार्च 2008 के अंत में 2.26 प्रतिशत था वह बढ़ कर अंत-मार्च 2010 में 2.39 प्रतिशत हो गया (जो अंशतः ऋण-वृद्धि में गिरावट के कारण भी हुआ)। ये सभी एनपीए के बढ़ते जाने में प्रतिबिंबित होते हैं जो पूर्व की प्रवृत्ति के विपरीत है (सकल एनपीए अंत-मार्च 2006 से अंत-मार्च 2011 तक की अवधि में 44.828 करोड़ रुपये[5] (86.3 प्रतिशत) तक बढ़ा)। बढ़ती ब्याज दरें और संकट की अवधि के दौरान पुनर्निर्माण में लगी काफी राशि यदि सावधानी से नहीं लगायी गयी तो वह बैंकों की आस्ति गुणवत्ता पर और भी दबाव डाल सकती है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि बैंक अपने मौजूदा एनपीए का समाधान करने के लिए प्रयास करें और अपनी जोखिम प्रबंधन प्रणाली को कठोर बनायें।

VII. आधारभूत संरचना का वित्तपोषण

25. भारत में आधारभूत संरचना के विकास का वित्तपोषण करने की बड़ी जरूरत को देखते हुए बैंकों से यह उम्मीद की जाती है कि वे आधारभूत संरचना संबंधी परियोजनाओं में वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए प्रमुख भूमिका निभायेंगे। पिछले कुछ वर्षों के दौरान, बैंकों के कुल ऋण संविभाग में आधारभूत संरचना-वित्त का हिस्सा काफी बढ़ गया है जिससे आस्ति-देयता असंतुलनों का प्रबंध करने की बड़ी चुनौती सामने आती है। बैंक-वित्तपोषित आधारभूत संरचना को पहले से ही काफी मात्रा में विनियामक प्रबंध के माध्यम से राशि प्राप्त हुई है। यह आधारभूत संरचना संबंधी परियोजनाओं के लिए वित्त के वैकल्पिक स्रोतों का पता लगाने के मुद्दे को काफी महत्वपूर्ण बना देता है। रिज़र्व बैंक इस संबंध में पहले ही अनेक उपाय आरंभ कर चुका है जिसमें आधारभूत संरचना के लिए उच्चतर एक्सपोजर सीमा की अनुमति देना, कारपोरेट बांडों में रेपो आरंभ करना, कारपोरेट बांडों के लिए सीडीएस की अनुमति देना, एनबीएफसी (एनबीएफसी-आइएफसी) की अलग कोटि का सृजन करना आदि शामिल हैं। हाल ही में सरकार की ओर से इन्फ्रास्ट्रक्चर डेट फंड्स (आइडीएफ) की व्यापक संरचना की घोषणा की गयी है जो स्थापित किये जाने के बाद वित्तपोषण का वैकल्पिक स्रोत बन सकता है।

VIII. विधायी सुधार

26. एक दक्ष विनियामक प्रणाली के लिए ठोस और स्पष्ट विधायी ढाँचा उसकी पूर्वापेक्षा होती है। इस समय भारत में लगभग 60 अधिनियम और बहुविध नियम और विनियम हैं जिनमें से अनेक पुराने हैं और

[4] गिरावट अनुपात वर्ष के प्रारंभ में 'मानक आस्तियों' के बकाया स्टॉक की तुलना में उस वर्ष के दौरान सृजित एनपीए का अनुपात होता है।

[5] 1 करोड़ = 10 मिलियन

अनेक संशोधनों ने कानून को अस्पष्ट और जटिल बना दिया है। भारत सरकार ने एक वित्तीय क्षेत्र विधायी सुधार आयोग (एफएलआरसी) का गठन किया है ताकि वित्तीय क्षेत्र से संबंधित विधियों, नियमों और विनियमों का पुनर्लेखन किया जाये और उन्हें सुचारु बनाते हुए भारत के तेजी से बढ़ते हुए वित्तीय क्षेत्र के साथ उनका सामंजस्य स्थापित किया जाये।

IX. उत्पाद नवोन्मेष

27. जबकि रिज़र्व बैंक उत्पाद नवोन्मेष का स्वागत करता है, चिंता इस बात की है कि उत्पादों को उचित रूप से समझा जाता है और उनका समर्थन तगड़ी जोखिम प्रबंधन प्रणालियों द्वारा किया जाता है और क्या ऐसा कोई ढाँचा उनकी उपयुक्तता और युक्तियुक्तता के संबंध में है जिससे उनके अपविक्रय को रोका जा सके। ये चिंताएँ उत्पादों के लिए रिज़र्व बैंक के विनियामक दिशा-निर्देश को आकार देते हैं जो या तो पहले से वित्तीय बाजारों में हैं या जिनके लिए रिज़र्व बैंक द्वारा अनुमति दी जा रही है। इस प्रकार की विनियामक नीतियों की डिजाइन बनाना हमेशा चुनौतीपूर्ण होता है क्योंकि इसके लिए नवोन्मेष का विवेकशीलता के साथ संतुलन बनाना जरूरी होता है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं:

- रिज़र्व बैंक ने वर्ष 2006 में प्रतिभूतिकरण दिशा-निर्देश जारी किये जब प्रतिभूतिकरण बाजार विकसित हो चुका था लेकिन सतर्कतापूर्वक ठोस ढंग से कार्य नहीं कर रहा था। इन दिशा-निर्देशों में अन्य बातों के साथ-साथ प्रतिभूतिकरण की अवधि में प्रतिभूतिकरण लेन देन से अर्जित लाभ का परिशोधन करने की कल्पना की गयी थी जो एक 'वितरण के लिए उद्भूत' मॉडल के विकास को रोकती थी जो उन्नत अर्थव्यवस्थाओं, विशेष रूप से अमेरिका में, प्रतिभूतिकरण की प्रक्रिया के केंद्र में अरेखित प्रोत्साहनों के समर्थन में था।
- फोरेक्स डेरिवेटिव खंड में, उपयुक्तता और युक्तियुक्तता के संबंध में विस्तृत दिशा-निर्देश होने के बावजूद अपविक्रय के अनेक मामले होते थे। इन दिशा-निर्देशों को प्राप्त अनुभव के आलोक में हाल ही में पुनः संशोधित किया गया है। एक महत्वपूर्ण नया विनियम यह है कि बैंक, जिनमें विदेशी बैंक भी शामिल हैं, किसी ऐसे डेरिवेटिव उत्पाद का सौदा नहीं कर सकते जिनकी कीमत वे स्वतंत्र रूप से नहीं लगा सकते हैं (विदेशी बैंकों के मामले में स्थानीय रूप से)।
- एक बड़ी धोखाधड़ी के संदर्भ में धन-प्रबंध प्रथाओं का मुद्दा सामने आया। वर्तमान में हम बैंकिंग प्रणाली में और अंतरराष्ट्रीय अधिकारिता में धन-प्रबंध प्रथाओं का अध्ययन कर रहे हैं। मुख्य चुनौती है उपयुक्तता और युक्तियुक्तता के परिप्रेक्ष्य में विनियमों के एक सेट को स्थापित किया जाना।
- अपने उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए हमने शुरू में कारपोरेट बांडों के संबंध में एक बिलकुल सादा सीडीएस आरंभ किया है जिसमें केवल विनियमित संस्थाओं को मार्केट मेकर्स के रूप में कार्य करने की अनुमति होती है।
- इस बात पर विचार करते हुए कि बैंकों द्वारा कारपोरेट बांडों की गारंटी दिया जाना कारपोरेट बांड बाजार के विकास में सहायक नहीं होगा, हमने बैंक गारंटी का समर्थन किये जाने के मजबूत तर्क के बावजूद इसकी अनुमति नहीं दी है। इस संबंध में कुछ देशों (चीन, दक्षिण कोरिया आदि) का अनुभव हमारी आशंका को मान्यता देते हैं।

X. गैर बैंकिंग खंड का विनियमन और पर्यवेक्षण

28. वैश्विक संकट के पीछे जो कारण रहे थे उनमें से एक कारण था छाया बैंकिंग प्रणाली में तेज वृद्धि होना जो ऋण मध्यस्थता का भी कार्य करता है जिसमें चलनिधि और परिपक्वता रूपांतरण शामिल है और कभी-कभी तो विशेष सुविधा भी दी जाती है। इसकी तेज वृद्धि का कारण था विनियामक अंतरपणन क्योंकि यह क्षेत्र अविनियमित / अल्पविनियमित रहा था। अनेक मामलों में बैंकों ने अपने जोखिमपूर्ण निवेश उन संस्थाओ या संरचनाओं में लगा रखे थे जो उनके साथ समेकित नहीं थे लेकिन जब संकट आया तब बैंकों को इन जोखिमों को अपने तुलनपत्र में लेना पड़ा। ऋण-उछाल की उच्च सीमा पर अमेरिका में छाया बैंकिंग का आकार इसके बैंकिंग क्षेत्र से लगभग दुगुना था और यह अभी भी 25 प्रतिशत बड़ा है। अनेक अन्य उन्नत देशों में जिसमें कनाडा भी शामिल है, यह क्षेत्र कम से कम बैंकिंग क्षेत्र जितना ही बड़ा है। अतः इस खंड का निरीक्षण और विनियमन अत्यावश्यक है और इस समय एक महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय एजेंडा है। बुनियादी सिद्धांत यह है कि कोई भी प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण संस्था निरीक्षण और विनियमन से बचनी नहीं चाहिए। जबकि अमेरिका में डॉड-फ्रैंक अधिनियम के अंतर्गत सभी प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण वित्तीय संस्थाएँ फेड के दायरे में आयेंगी, यही स्थिति अन्य देशों में आवश्यक रूप से नहीं भी हो सकती है। विनियामक चुनौती यह होगी कि प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं, बाजारों और उत्पादों की पहचान के लिए एक ढाँचा बनाया जाये और निरीक्षण के लिए तथा यदि आवश्यक

हो तो विवेकपूर्ण विनियमन के लिए एक ढाँचा विकसित किया जाये। जबकि यह मुद्दा विनियमित वित्तीय समूहों के लिए महत्वपूर्ण है, इसका महत्व उन स्थानों पर अधिक है जहाँ ऐसी संस्थाएँ विनियमित वित्तीय समूहों का भाग नहीं हैं।

29. वर्तमान विकासमान दृष्टिकोण तीन चरणों की प्रक्रिया है : (i) समग्र छाया बैंकिंग प्रणाली की स्कैनिंग और मैपिंग , (ii) छाया बैंकिंग प्रणाली के पहलुओं की पहचान करना जो परिपक्वता रूपांतरण, ऋण जोखिम अंतरण या विशेष सुविधा आदि के चलते प्रणालीगत जोखिम या विनयामक अंतरपणन की चिंता उत्पन्न करता हो और (iii) प्रणालीगत जोखिम और /या विनियामक अंतरपणन की चिंता उत्पन्न करने वाली छाया बैंकिंग प्रणाली का विस्तृत मूल्यांकन जिससे उन संस्थाओं, बाजारों और लिखतों का गहन विश्लेषण किया जा सकता हो जिनके कारण चिंता बढ़ रही है। छाया बैंकिंग प्रणाली के निरीक्षण में अप्रत्यक्ष विनियमन शामिल होगा जिसके लिए बैंकों के छाया बैंकिंग संस्थाओं के साथ परस्पर संवाद को विनियमित करना तथा मुद्रा बाजार निधियों, रेपो बाजारों और अन्य छाया बैंकिग संस्थाओं के विनियमन को सुदृढ़ किया जाना होगा।

30. भारत में काफी पहले इन मुद्दों को पहचाना गया। रिज़र्व बैंक ने वर्ष 2006 में ही जमाराशि स्वीकार नहीं करने वाली प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण एनबीएफसी के लिए, जिनका विनियमन हलके ढंग से किया जाता था, नपा-तुला ढाँचा तैयार किया ताकि विनियामक अंतरपणन और प्रणालीगत जोखिम के मुद्दे पर ध्यान दिया जा सके। ढाँचे के घटको में विवेकपूर्ण पूँजीगत अपेक्षाएँ, एक्सपोजर मानदंड, चलनिधि प्रबंधन, रिपोर्टिंग अपेक्षाएँ, कारपोरेट अभिशासन और प्रकटीकरण मानदंड शामिल थे। वित्तीय क्षेत्र विनियामकों के बीच और सरकार के साथ समन्वय रखने के लिए वित्तीय बाजारों के संबंध में उच्च स्तरीय समन्वय समिति (एचएलसीसीएफएम) के रूप में एक संस्थागत तंत्र भी था जिसके स्थान पर अब वित्तीय स्थिरता विकास परिषद (एफएसडीसी) लायी गयी है।

31. एनबीएफसी के लिए एक व्यापक विनियामक ढाँचा मौजूद रहने के बावजूद अनेक अंतराल अभी भी दिखाई देते हैं। जैसाकि एफएसआर (जून 2011) में इंगित किया गया है, बैंकों की तुलना में एनबीएफसी और विभिन्न विनियामकों के दायरे में आने वाले एनबीएफसी के लिए विनियमों में अंतर विनियामक अंतरपणन के लिए गुंजाइश छोड़ते हैं। विनियामक परिमिति में अंतराल और दुर्बलताएँ हैं - धन-प्रबंध कार्यकलाप, सुनियोजित उत्पाद, हेज फंड, आदि पर ध्यान देना आवश्यक है। सरकार के स्वामित्व वाले एनबीएफसी के लिए प्रणालीगत महत्व वर्षों से बढ़ता गया है और ऐसी संस्थाओं के लिए विनियामक ढाँचे का पुनः परीक्षण किया जाना आवश्यक है। एक समिति (अध्यक्ष : श्रीमती उषा थोरात, भूतपूर्व उप गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक) इनमें से कुछ मुद्दों की जाँच-पड़ताल कर रही है अर्थात एनबीएफसी की परिभाषा, विनियामक अंतराल और विनियामक अंतरपणन, कारपोरेट अभिशासन और पर्यवेक्षण आदि। छाया बैंकिंग प्रणाली के संबंध में कार्रवाई करते समय चुनौती होती है एक विवेकपूर्ण ढाँचा विकसित करना जो इस खंड के बैंकों से अंतर को पहचानते हुए प्रणालीगत जोखिम और विनियामक अंतरपणन के संभाव्य सृजन के संबंध में कारगर ढंग से कार्य करे। इस संबंध में अंतरराष्ट्रीय एजेंडा को कार्यान्वित करना बहुत चुनौतीपूर्ण होगा।

XI. भारत में वित्तीय कंपनी समूह के लिए नियंत्रक कंपनी ढाँचा आरंभ करना

32. इस समय भारत में अधिकांश वित्तीय समूहों की अगुआई बैंकों द्वारा की जाती है और उनकी व्यवस्था बैंक सब्सिडियरी मॉडल के अंतर्गत की जाती है। यह मॉडल कारपोरेट अभिशासन, कार्य-निष्पादन और अनुषंगी संस्थाओं की पूँजीगत अपेक्षाओं को पूरा करने का दायित्व मूल बैंक पर सौंपता है। इसके अतिरिक्त, मूल बैंक बहुत सारवान प्रतिष्ठामूलक जोखिम वहन करता है। 'भारत में बैंकों के लिए नियंत्रक कंपनी ढाँचा आरंभ करने' के संबंध में गठित कार्यदल ने सिफारिश की है कि प्रमुख वित्तीय कंपनी समूहों को नियंत्रक कंपनी ढाँचे की ओर मोड़ा जाये ताकि इन सीमाओं पर कुछ हद तक ध्यान दिया जा सके। इन सिफारिशों के कार्यान्वयन की मुख्य चुनौतियों में शामिल हैं एक नया कानून बनाया जाना जो वित्तीय नियंत्रक कंपनियों के कार्यों पर नियंत्रण कर सके, मौजूदा कंपनी समूहों को युक्तियुक्त कर-व्यवहार (टैक्स ट्रीटमेंट) के माध्यम से सही प्रोत्साहन और सरकारी क्षेत्र के बैंकों के मामले में रणनीतिक और सार्वजनिक नीति के मुद्दों का सरकार द्वारा समाधान किया जाना।

33. अंत में, मैं एफआइसीसीआइ और आइबीए को इस बौद्धिक रूप से प्रेरक और शिक्षाप्रद सम्मेलन का आयोजन करने के लिए बधाई देता हूँ। मैं आपका भी धन्यवाद करता हूँ कि आपने धैर्यपूर्वक उन विनियामक दुविधाओं और चुनौतियों जो दुनिया में विनियामकों के समक्ष उपस्थित हैं और जो अधिकाधिक अनिश्चित होती जाती है, पर की गयी चर्चा को सुना। मेरा मानना है कि इस प्रकार के सम्मेलन जो विनियामकों, नीति-निर्माताओं और बाजार प्रतिभागियों के बीच विचारों के आदान-प्रदान का मंच उपस्थित करते हैं, निश्चित रूप से अनिश्चितता को कम करने और कार्य को सरल बनाने में मददगार होंगे।

संदर्भ

अदमाती, अनत आर., डि-मार्जो, पीटर एम., हेलविग, मार्टिन एफ., फिल्डरर, पॉल पी., (2011), *'फैलेसीज, इर्रेलेवेंट फैक्ट्स एंड मिथ्स इन डिस्कशन ऑफ कैपिटल रेगुलेशन : ह्वाई बैंक इक्विटी इज नॉट एक्सपेंसिव'* मार्च।

अंतरराष्ट्रीय निपटान बैंक, (2010), *'रिजल्ट्स ऑफ दि कंप्रेहेंसिव क्वांटिटेटिव इंपैक्ट स्टडी'* दिसंबर।

कैरुआना, जैमि, (2011), *'रेगुलेटरी रिफॉर्म : रिमेनिंग चैलेंजेज'*, जुलाई, लक्जमबर्ग।

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, (2011), *'पॉलिसी इंस्ट्रूमेंट्स टु लीन अगेंस्ट दि विंड इन लैटिन अमेरिका'*, वर्किंग पेपर डब्लूपी /11 /159, जुलाई।

मैक्लेम, टिफ, (2011), *'ग्लोबल फाइनैंशियल रिफॉर्म : मेंटेनिंग द मोमेंटम'*, जुलाई, जी-20 कार्यशाला, पैरिस में की गयी टिप्पणी।

मोहन, राकेश, (2007), *'इंडियाज फाइनैंशियल सेक्टर रिफॉर्म्स : फॉस्टरिंग ग्रोथ ह्वाइल कंटेनिंग रिस्क'*, दिसंबर, भाषण, भारतीय रिज़र्व बैंक।

भारतीय रिज़र्व बैंक, 2010-11, वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट, मई 2011

भारत में वित्तीय नियंत्रक कंपनी संरचना की शुरुआत के संबंध में कार्यकारी दल की रिपोर्ट।

सिन्हा, आनंद, (2011), *'मैक्रोप्रूडेंशियल पॉलिसिज - इंडियन एक्सपीरिएंस'*, जून, वित्तीय क्षेत्र के लिए नीतिगत चुनौतियों पर ग्यारहवें वार्षिक अंतरराष्ट्रीय सेमीनार, जिसका सह-आयोजन बोर्ड ऑफ गवर्नर्स ऑफ फेडरल रिज़र्व सिस्टम, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक, वाशिंगटन डीसी द्वारा किया गया था, के अवसर पर दिया गया भाषण।

वेलिंक, नाउट, (2011), *'बासेल III एंड दि इंपैक्ट ऑन फाइनैंशियल मार्केट्स'* आइएनजी बासेल III फाइनैंसिंग कन्फरेंस, एम्सटर्डम में अप्रैल में दिया गया भाषण।

फर्नांडेज, डि लिस, सैंटियागो, गार्सिया हरेरो, अलिसिया, (2010), *'डाइनामिक प्रोविजनिंग : सम लेसन्स फ्रॉम एक्जिस्टिंग एक्सपीरिएंसेज'*, एडीबीआइ वर्किंग पेपर सीरीज सं. 218, मई।